बुनियादी शिक्षा का मूलतत्व

हृदय कांत दीवान



पृष्ठभूमि

शिक्षा को जीवन के लिए ऐसे ढंग से तैयारी करना माना जाता है, जिसके द्वारा बड़ा होता हुआ सीखने वाला न केवल समाज में समाहित होता है, बल्कि उसमें उस समाज को रूपान्तरित करने की अन्तर्निहित क्षमता, इच्छा और सामर्थ्य भी आती है। आज हमारी शिक्षा बच्चों को उनकी जड़ों से दूर जाने से रोकने में असमर्थ है। वे ऐसे पेशेवर कामों की आकांक्षा कर रहे हैं जिनमें किसी शारीरिक श्रम की, उद्यम करने में निहित जोखिम की तथा किसी सामाजिक जिम्मेदारी की जरूरत नहीं होती और जिसमें अपने साथियों के साथ सहभागिता पूर्वक कार्य करने की भी आवश्यकता नहीं होती। वे उत्तरोत्तर अधिक अकेले, दूसरों से कटे हुए होते हैं और उनका सोचना, अनुभवों को लेना, उनका रवैया और भावनाएँ, सब कुछ यंत्रवत होता है। हम सभी को शिक्षा के संज्ञानात्मक पहलुओं और उसकी यांत्रिक तार्किकता पर दिए जा रहे जरूरत से ज्यादा जोर का अनुभव होता है। तार्किकता मूल्यवान है, परन्तु चरम रूप से और अकेले नहीं। उसे नीति और संवेदना के साथ संशोधित किया जाना जरूरी है। स्कूल के कार्यक्रम में बच्चे में जिम्मेदारी (स्कूल के बारे में, दोस्तों के बारे में और अपने खुद के जीवन के बारे में जिम्मेदारी) का एहसास निर्मित करना भी शामिल नहीं रहता। लोग काम में आनन्द लेने और साधारण जीवन चुनने के बजाय भौतिकवादी उपभोक्तावाद और आरामतलबी की ओर जरूरत से ज्यादा झुके होने का विकल्प चुनते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि बुनियादी तालीम के पास इन सभी समस्याओं के बारे में कहने के लिए कुछ है और वह इनमें से कुछ का समाधान करने का मार्ग भी है।

शिक्षा क्यों और बुनियादी शिक्षा का मुद्दा क्यों

इस पर विचार करते समय हमें यह याद रखना जरूरी है कि किसी भी शैक्षिक विचार को उसके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भ से अलग करना सही नहीं है। यह कहना काफी नहीं है कि शिक्षा इन सभी से प्रभावित होती है, बल्कि यह भी जोड़ना चाहिए कि वह इनके द्वारा ही निर्देशित होती है। इसके समर्थकों को इनकी जो समझ होगी, उसी से इसके प्रयोजन, इसका सहायक आधार और सभी अन्य चीजें निकलकर आती हैं। वे वह विचारधारात्मक बुनियाद या मजबूत चट्टान होते हैं, जिनके आधार पर शिक्षा की अवधारणा का निर्माण और उसका क्रियान्वयन होता है। बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता और उसके वास्तविक उद्देश्य के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत बहसें भी हुई हैं। यह एक ऐसा विचार है जिसकी व्याख्या कई तरह से और कई सन्दर्भों में की गई है। इसको इस दृष्टि से भी जाँचा गया है कि यह नए सिद्धान्तों का एक समूह है या कि पुराने परिचित सिद्धान्तों का ही कोई संयोजन है। बुनियादी शिक्षा के निरूपण की ओर ले जाने वाली इस चर्चा में, भारतीय समाज के ऐतिहासिक सन्दर्भों की तथा उस समाज के भीतर और बाहर होने वाले परिवर्तनों और विकास के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं की जाँच–पड़ताल करना महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए यह तर्क दिया जा सकता है कि बहुत अधिक लोगों तक शैक्षिक सुविधाओं को पहुँचाने के पीछे शिक्षा के लोकतांत्रीकरण का उदार उद्देश्य होने के बजाय उसकी जरूरत आर्थिक हितों के विस्तार के कारण पड़ी। हालाँकि, इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा का विस्तार इस बात को स्वीकार करने में भी निहित है कि कुछ खास लोगों का समूह ही इसका पात्र नहीं होता जो कि सीख सकते हैं, पढ़ और लिख सकते हैं और ज्ञानवान हो सकते हैं। जैसे–जैसे अधिक व्यापक समुदाय के शिक्षित होने को स्वीकार्यता मिली, वैसे ही यह विचार–विमर्श भी विकसित हुआ कि उनको कौन शिक्षित करेगा, शिक्षा की विषयवस्तु में क्या निहित होगा, उसका ढाँचा क्या होगा, शिक्षा कहाँ दी जाएगी आदि। उसके प्रयोजन और उद्देश्यों, उसके प्रशासन, नियंत्रण और निर्णय लेने की प्रक्रिया, उसकी वित्तीय आपूर्ति और उसके स्रोतों और उनकी प्रकृति, शिक्षक और उसका बच्चों तथा समुदाय से सम्बन्ध – ये सभी सवाल विचार–विमर्श और विवाद के मुद्दों का हिस्सा थे। वे इस विमर्श को उन

लोगों के दायरे से बाहर ले गए जो उसे कामकाजी आर्थिक प्रयोजनों तक ही सीमित रखने चाहते थे।

शिक्षा के प्रयोजन और उसके विस्तार के निहितार्थों के बारे में यह संघर्ष जारी है, और वह भी उस नजरिए को प्रभावित करता है जिससे बुनियादी शिक्षा को देखा जाता है। ये सवाल उस विमर्श का हिस्सा हैं जो देश के लिए और शायद उससे भी अधिक व्यापक स्तर पर, शिक्षा व्यवस्था को निर्धारित करने का प्रयास कर रहा है। भारतीय सन्दर्भ में, आजादी के पहले और उसके आसपास जिस ढंग से सरकार ने शिक्षा और उसके प्रयोजन को परिभाषित किया और उसकी पहुँच अधिक व्यापक बनाने के लिए जो तंत्र वह स्थापित करना चाहती थी, उसका स्वर वह नहीं था जो उन्हें पसन्द आता जो आजादी के संघर्ष का हिस्सा रहे थे। आजादी के बाद 65 वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने पर भी वह तंत्र बहुत हद तक उन्हीं सिद्धान्तों और दृष्टिकोणों को प्रतिबिम्बित करता है, यह तथ्य हमारे लिए तकलीफदेह सवाल खड़े करता है।

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और तत्कालीन सन्दर्भ

जब हम इस बहस के मुद्दों पर गौर करते हैं, तो हम यह देख सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त का मूलतत्व आज की शिक्षा व्यवस्था को चुनौती देता है। इन मुद्दों को आज के सन्दर्भ में पुनः स्पष्ट रूप से व्यक्त किए जाने की और उनकी गहरी जाँच–पड़ताल किए जाने की जरूरत है। हो सकता है कि व्याख्या किए जाने पर, यह चुनौती और उसके निहितार्थ और प्रासंगिकता आज आधारभूत रूप से उससे भिन्न विवरण प्रस्तुत करें जैसा कि उस समय हुआ था। बुनियादी शिक्षा के प्रयोजन, निहितार्थ और प्रासंगिकता के बारे में भ्रम उस तरीके के कारण भी उत्पन्न हुआ जिस तरह उस समय उसे लागू किया गया और उसकी ऐसी व्याख्या करने दी गई जिसने उसके शक्तिशाली स्वरूप को बहुत सीमित कर दिया। बुनियादी शिक्षा के बारे में कमजोर कर दिया गया यह विमर्श निश्चित ही कुछ प्रमुख सामाजिक–राजनैतिक तथा आर्थिक निहितार्थों को नजरअंदाज कर देता है और शिक्षा के आधारभूत उद्देश्य में जो अन्तर है उस पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता। हो सकता है कि बुनियादी शिक्षा के विमर्श की कई सुविधाजनक व्याख्याओं के उपजने के लिए विरोधियों को समाहित करने की जानबूझ कर अपनायी गई रणनीतियाँ या गलतफहमियाँ भी उतनी ही जिम्मेदार हों जितनी कि शायद व्याख्या के सन्दर्भ को आज की परिस्थितियों में बदल पाने की असमर्थता है। यहाँ यह स्वीकार किया जाना होगा कि यह लेख भी इस विचार की एक और व्याख्या ही है। बुनियादी शिक्षा के समर्थक और विरोधी दोनों को ही लग सकता है कि इसमें भी कुछ ऐसे बिन्दुओं को छोड़ दिया गया है, जो उनकी दृष्टि में इस शिक्षा के महत्त्व, प्रासंगिकता और उसके अभिप्राय को तथा इस विश्लेषण को मौलिक रूप से बदल देंगे।

इस सरोकार की विस्तृत व्याख्या के लिए बहुत अधिक विचार–विमर्श की जरूरत होगी, यहाँ हमारा प्रयोजन केवल इस विश्लेषण की एक बुनियादी तस्वीर प्रस्तुत करना है। इसलिए, हम इस शिक्षा से सम्बन्धित केवल कुछ पहलुओं पर ही गौर करेंगे और कुछ उन दिशाओं की बात करेंगे जिनके बारे में सोचना उपयोगी होगा। उदाहरण के तौर पर विचार किए जाने लायक एक बिन्दु इसमें निहित स्थानीय समुदाय के स्व–संचालन और स्व–शासन का सिद्धान्त है। समुदाय को अपना मार्ग स्वयं निर्मित करने के लिए और अपने बच्चों की शिक्षा को निर्देशित करने के उसके विचारों और कल्पना की जो जरूरत है, वह वही नहीं होती जो कि ऐसा करने के लिए केन्द्रीय या राज्य सरकार की होती है। युवाओं को उनके समुदाय के लिए सहायक बनने और उसमें समायोजित होने तथा उससे सामंजस्य बनाने के लिए और साथ ही साथ उनके सीखे गए नए विचारों से समुदाय का तालमेल बिठा सकने की सामर्थ्य प्रदान करने के लिए, हमें एक उद्यम के रूप में शिक्षा के प्रयोजन की पड़ताल करने की जरूरत है। इसमें निहित केन्द्रीय अभिप्राय ऐसे अभिकर्ता निर्मित करना है जो समुदाय का पूरी तरह से हिस्सा होते हुए उसे रूपान्तरित करने में समर्थ हों। पुनः, यहाँ समुदाय की धारणा का विस्तार करते हुए उसे राष्ट्र (राष्ट्रीय पहचान) और फिर विश्व (वैश्विक नागरिक) तक ले जाने पर उसकी व्याख्या उससे बहुत भिन्न हो जाती है जैसी कि घनिष्ठ समुदाय और लोगों के बीच प्रत्यक्ष मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में होती है। बुनियादी शिक्षा के कुछ समर्थकों का यह विलाप मार्मिक है कि आधुनिक शिक्षा केवल साक्षरता और अंकज्ञान मात्र है, इसलिए वह दूसरों के साथ समानुभूति के बोध को नष्ट करता है और शोषण को प्रोत्साहित करने वाला होता है। हमने आधुनिक शिक्षा को ऐसा करते हुए देखा है। उसने लोगों को उनके समुदाय से काट दिया है। उनकी समानुभूति में तथा समुदाय के लोगों के जीवन को रूपान्तरित करने की उनकी क्षमता में, किसी विशेष वृद्धि के बिना उनमें व्यवधान पैदा किया

है। उसने बड़े समूह निर्मित करने के लिए छोटे समुदायों में से लोगों को बाहर कर दिया है। हम यहाँ यह नहीं कह रहे हैं कि यह अच्छा है या बुरा है, बल्कि केवल इस परिवर्तन की ओर इशारा कर रहे हैं। हालाँकि, यह तर्क भी दिया जा सकता है कि ऐसा करना आधुनिक शिक्षा का इरादा नहीं था या कि वह खुद भी इसके खिलाफ है। ऐसा तो केवल उस परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ है जिस तरह अर्थव्यवस्था और उससे समाज बदला है।

शिक्षा का नियंत्रण और उसे दिशा प्रदान करना

बुनियादी शिक्षा से निकलने वाले सिद्धान्तों के वर्तमान सन्दर्भ को दृष्टि में रखने के लिए और उसके अनुसार विमर्श को निर्मित करने के लिए, आइए हम आज की शिक्षा व्यवस्था के कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर गौर करें। शिक्षा व्यवस्था की वित्तीय आपूर्ति और उसका प्रशासन सरकार द्वारा किया जाता है। हालाँकि अब अनेक निजी स्कूल हैं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ रही है, फिर भी उनकी संख्या सरकारी स्कूलों की संख्या से बहुत कम है। दूसरी तरफ समुदाय द्वारा प्रबन्धित स्कूलों की संख्या लगातार घटती जा रही है क्योंकि उन पर दोनों ओर से दबाव पड़ रहा है। सरकार उनका नियंत्रण अपने हाथ में ले रही है या फिर निजी प्रबन्धन के कारण, जो एक या थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में होता है। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को सुधारने की जरूरत को लेकर भी बहुत मोर्चाबन्दी की गई है। इस जरूरत को लेकर भी चर्चा होती है कि ऐसे सार्वजनिक स्कूल कम से कम विद्यार्थियों के उस आयु–समूह में पहुँचने से पहले सबको उपलब्ध होना चाहिए, जिसमें उन सबको शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल में होना चाहिए। अब इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है कि कानूनी प्रतिबद्धता के अन्तर्गत 10वीं कक्षा तक सभी सीखने वालों के लिए अनिवार्य सार्वभौमिक शिक्षा उपलब्ध होना चाहिए। शिक्षा के अधिकार ने पहले ही इसे कानूनी रूप से अनिवार्य कर दिया है कि सभी बच्चों को स्कूल जाना चाहिए और उनमें कम से कम 8 वर्षों तक शिक्षा हासिल करना चाहिए। इसलिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के अनुसार प्रत्येक बच्चे को स्कूल में दाखिल होकर ऐसी पद्धति से शिक्षित होना आवश्यक है जो किसी न किसी प्रकार से राज्य की शैक्षिक अफसरशाही द्वारा तय किए गए उद्देश्यों और तरीके के अनुरूप हो। प्रयोजनों को लेकर होने वाली चर्चाओं के ऊपर भी यह एहसास साफ तौर पर हावी रहता है कि कौन शैक्षिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है और उनके लिए धन की आपूर्ति करता है।

पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें ऐसे निकायों द्वारा निर्मित की जाती हैं जो सरकार से सम्बद्ध होती हैं, चाहे वह राज्य सरकार हो या केन्द्र सरकार। इसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के दस्तावेजों की भावना, उनकी समझ और उनके विवरणों के अनुरूप समझा जाता है। शिक्षा के सालों का बँटवारा, जोर दिए जाने वाले पहलू, उसका केन्द्रीय प्रयोजन और ऐसे अन्य सभी मुद्दे भी सरकार द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। इसका एक हालिया उदाहरण है दिल्ली विश्वविद्यालय और कुछ निजी विद्यालयों द्वारा उनके 4–वर्षीय स्नातक कार्यक्रमों को वापस लेना, क्योंकि वे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप नहीं थे जिसने 10+2+3 के स्वरूप की अनुशंसा की थी। विश्वविद्यालय और शिक्षा मण्डल (बोर्ड) अपने कार्यक्रमों का कैसा स्वरूप निर्मित कर सकते हैं, इसे तय करने की नीति निर्धारित करने की सर्वोच्च शक्ति सरकार के पास होना और राज्य सरकारों तथा उनके शिक्षा मण्डलों के यह जताने के सतत प्रयास कि उनका कार्यक्रम पाठ्यक्रम की राष्ट्रीय रूपरेखा के दस्तावेजों के अनुरूप है – ये भी इसी बात के उदाहरण हैं। स्कूलों में इस नीति का और सरकारी अधिकारियों द्वारा की गई उसकी व्याख्या का पालन करने की इच्छा और आवश्यकता सिर्फ इसलिए नहीं होती कि उनमें से कुछ को सरकार से पैसा मिलता है। इसका कारण उस स्पष्ट वैधता का उपयोग करना भी होता है जो उससे प्राप्त होती है।

परन्तु, शिक्षा के लिए होने वाला अधिकांश निवेश और खर्चा अभी भी सरकार द्वारा ही किया जाता है। यह पैसा जरूर लोगों से ही आता है, परन्तु वह करों, उपकरों और अधिभार के रूप में आता है। ऐसा कोई विशेष उत्पाद या गतिविधि नहीं होती जिस पर लगाया गया कर सीधे शिक्षा के लिए जाता हो। पैसा कहाँ और किस तरीके से खर्च किया जाएगा, यह भी सरकार द्वारा तय किया जाता है। शिक्षकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक और वेतन भी ऐसी चीज है जिसका समुदाय से कोई सम्बन्ध नहीं होता और उसका इस मामले में कोई दखल भी नहीं होता। शिक्षक का स्वभाव, उसके द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री और विधियाँ तथा बच्चों का मूल्यांकन किस तरह होगा, ये सभी बातें सरकार के शैक्षिक ढाँचों द्वारा तय की जाती हैं।

सामुदायिक भागीदारी और उसका व्यावहारिक क्रियान्वयन

स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया में समुदाय को भागीदार बनाने के विभिन्न प्रयास हुए हैं, जिनमें शिक्षकों की नियुक्ति करने और उनका प्रबन्धन करने जैसे काम भी शामिल रहे हैं। स्कूल प्रबन्धन समितियों का विचार, जिनमें माता–पिता सदस्यों के रूप में शामिल रहते हैं, भी सहभागिता की भावना से ही उपजा है। परन्तु इस प्रयास के परिणाम निराशाजनक रहे हैं। जो महत्त्वपूर्ण समस्या चिन्ता का कारण है वह है शैक्षिक प्रक्रिया को तय करने और उसमें योगदान देने में समुदाय की सीमित भागीदारी। समुदाय की वर्तमान भूमिका ज्यादा से ज्यादा सहायक श्रम की ही रही है। उनकी भागीदारी स्कूल के भवनों के लिए दान देने और उनके निर्माण में मदद करने, शिक्षकों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने और उसकी निगरानी करने, या बच्चों को इकट्ठा करके स्कूल लाने, ले जाने की ही रही है। इसके अलावा उनकी कोई और भूमिका या योगदान नहीं होता। स्कूल से अपने बच्चों के लिए उनकी अपेक्षाएँ उनको सेवा क्षेत्र, सफेद कालर वाली दफ्तरी नौकरियों या सरकारी नौकरियों के लिए तैयार करने की होती हैं। उनके आसपास मौजूद अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने के लिए बच्चों को तैयार करने के लिए स्कूल की शिक्षा में बहुत कम गुंजाइश होती है। जहाँ एक ओर हमारा यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि किसी भी नौकरी के अवसर तक हरेक की पहुँच हो, वहीं स्थानीय समुदाय की उपेक्षा करके, स्कूली शिक्षा लगातार पास–पड़ोस के आर्थिक उद्यम के बड़े हिस्से को तुच्छ बना देती है। इसके साथ ही उनके अभीप्सित लक्ष्यों को न समझने के कारण समुदाय स्कूल के साथ और खुद अपने बच्चों के साथ कारगर संवाद करने में असमर्थ रहता है। हाल के दस्तावेजों ने इस चिन्ता को उठाने का प्रयास किया है और समुदाय की ज्यादा बड़ी भूमिका की जरूरत को दर्शाया है। परन्तु, अभी क्षितिज पर उसके दिखाई देने के कोई संकेत नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि इसे सम्भव बनाने वाले कारकों का न होना और उसके फलस्वरूप सभी पक्षों में इसके प्रति आस्था का अभाव, एन.सी.एफ.में व्यक्त की गई समुदाय की भूमिकाओं के दायरे और उनके वास्तविक क्रियान्वयन, दोनों को कठिन बना देता है।

पाठ्यचर्या से उभरते प्रमुख सिद्धान्त

उपरोक्त समस्याओं के प्रकाश में, आइए हम पाठ्यचर्या सम्बन्धी उन प्रमुख सिद्धान्तों की फिर से पड़ताल करें जिन्हें हम बुनियादी शिक्षा के विचार से निकालते हैं। ऐसा करते समय, हमें यह याद रखना होगा कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बुनियादी शिक्षा के विचार को हास्यास्पद दिखाने का प्रयास करती है। ये सिद्धान्त जिस रूप में उन्हें यहाँ व्यक्त किया गया है उस तरह नहीं देखे जाते, बल्कि वे उस आन्दोलन की रीढ़ की तरह थे जिसने इतने अधिक लोगों को संलग्न किया और उनको शैक्षिक और अन्य सम्बन्धित लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं को प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित किया। जिस तरह से ये सिद्धान्त उभरकर आए वह एक समान नहीं था, और न ही उनमें निश्चित समानताएँ थीं। पर उनके पीछे एक आधारभूत भावना काम कर रही थी। वह भावना बाहरी लोगों के द्वारा लादे गए शासन का प्रतिरोध करने और समाज का पुनर्निर्माण करने की आकांक्षा से उपजी थी। हो सकता है कि उसे बुनियादी शिक्षा की अवधारणा में पूरी तरह सुस्पष्ट रूप से व्यक्त या प्रतिबिम्बित न किया गया हो, पर वह ऐसी शिक्षा के विचार का आधार थी। आइए, हम इन सिद्धान्तों में से कुछ पर गौर करें :

(क) यह ऐसी प्रक्रिया है जो समुदाय, उसकी धारणाओं, चिन्ताओं और अनुभवों को शामिल करने पर आधारित है। इस सिद्धान्त को किस तरह समझा जाएगा और किस हद तक समुदाय को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाएगा या उसकी धारणाओं को बदलने का प्रयास किया जाएगा यह बहस का मुद्दा हो सकता है। शिक्षा की भूमिका को संस्कृति, परम्परा और विरासत की संरक्षक होने के साथ ही नए विचारों और तरक्की को लाने वाली प्रक्रिया, दोनों तरह से देखे जाने के कारण उपरोक्त मुद्दे पर कोई एक दृष्टि होना मुश्किल है। इसलिए, इस बारे में उस काल के अनेक भारतीय शिक्षाविदों के दृष्टिकोण अलग–अलग थे। यह बहस कि कौन अधिक शिक्षित है, निरक्षर गैर–पढ़ा–लिखा व्यक्ति या कि जिसने 'केवल' किताबें पढ़ी हैं, आज भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है।

(ख) यह ऐसी प्रक्रिया है जो बच्चे के सन्दर्भ में स्थापित की जाती है और जो उसके अनुभवों पर आधारित होती है और उनका उपयोग करती है। यह एक और मुद्दा है जिसे 'रचनावाद (कंस्ट्रक्टिविज्म) या निर्माणवाद (कंस्ट्रक्शनिज्म) – के विचार को केन्द्र में ला दिया है'। (यहाँ जो मुद्दा उठाया जा रहा है उसके सीमित प्रयोजन को देखते हुए हम यहाँ उनकी समानताओं और अन्तरों का विश्लेषण करने की कोशिश नहीं करेंगे।)

यह एक ओर उस ज्ञान के दायरे पर ध्यान केन्द्रित करता है जिसके साथ हम काम कर रहे हैं, लेकिन साथ ही यह प्रश्न भी उठाता है कि ज्ञान क्या है और कौन–सा ज्ञान जायज है। जहाँ शिक्षा को जानने की एक प्रक्रिया के रूप में देखना सर्वमान्य है, वहीं उसमें बच्चे और समुदाय के ज्ञान के केन्द्रीय महत्त्व का मुद्दा यह प्रश्न उठाता है कि औपचारिक स्कूल व्यवस्था में किसके साथ काम करना चाहिए।

सीखने की प्रक्रिया पर केन्द्रित विश्लेषण इसे हास्यास्पद बनाकर शिक्षा को ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया बनाम ज्ञान का निर्माण करने की प्रक्रिया के मुद्दे तक सीमित कर देता है। हालाँकि ऐसा कहना थोड़ा कठोर समझा जाएगा, परन्तु शिक्षा के कार्यक्रम अकसर ज्ञान की पुष्टि करने के ढाँचों को भुला ही देते हैं। वे केवल इस पर जोर देते हैं कि बच्चे स्वयं अपने उत्तरों का निर्माण करें। इसे अकसर बुनियादी शिक्षा और ज्ञान के स्थानीय ढाँचों के प्रति आदर से जोड़ा जाता है।

(ग) बच्चे की भाषा का उपयोग और उसके भाषाई ज्ञान का और अधिक उपयोग करना। इस विशेष सिद्धान्त का आधार इसके दो महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। एक उस समय के विशेष सामाजिक–आर्थिक सन्दर्भ से निकलता है और कुछ दृष्टियों से अभी के भी और दूसरा सीखने की मानवीय तरकीबों के बारे में व्याप्त भावना से निकलता है। स्वयं के प्रति सम्मान की भावना और अपनी पहचान निर्मित करना तथा जिस समुदाय से बच्चा आता है उसकी संस्कृति, परम्पराओं और सोचने के तरीकों के प्रति सकारात्मक रवैया रखना, इन सबके लिए स्थानीय भाषा की आवश्यकता होती है। उसका इस्तेमाल अपनी स्वयं की अवधारणाओं को सामने लाने और किताबों की औपचारिक और अमूर्त धारणाओं से उनकी तुलना करने में बच्चे को समर्थ बनाता है। स्थानीय भाषा का उपयोग इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका मतलब उसका विस्तार और विकास करते हुए उसमें नवीन अवधारणाओं को शामिल करना भी होता है। यह समुदाय को संगठित करने और उनके बीच में विचारों को साझा करने का साधन भी है, बजाय इसके कि उन अनेक लोगों को इस प्रक्रिया में भागीदार बनने से रोक दिया जाए जो स्कूल की नई भाषा को नहीं समझ पाते, और इसलिए वे उन लोगों से नए ज्ञान को हासिल कर आत्मसात नहीं कर पाते जिन्होंने उसे केवल किताबों के सम्पर्क में रहने और उन्हें पढ़ने से सीखा है। इसलिए, मातृभाषा के उपयोग के पीछे सिर्फ यह मासूम शैक्षणिक उद्देश्य भर नहीं है कि इससे बच्चे को अपने अवधारणात्मक ढाँचे निर्मित करने में मदद मिलेगी, बल्कि यह इस कहीं अधिक गहरी भावना को व्यक्त करता है कि बच्चों और उनके समुदाय की भाषा को महत्त्व और सम्मान दिया जाना चाहिए और उसमें नए विचारों और ज्ञान को शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार यह समुदाय को अपनी नियति स्वयं निर्मित करने के लिए सशक्त बनाता है।

(घ) सभी बच्चों और समुदाय के सभी सदस्यों तक पहुँचना, उनके काम का सम्मान करना और उसके तत्वों को स्कूल में शामिल करना। बच्चों को क्या सीखना चाहिए, बच्चों की सीखने में मदद करना और उनके मूल्यांकन के लिए जिम्मेदारी स्वीकार करना, इन सभी में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करना। स्थानीय समुदाय बच्चों को विभिन्न प्रकार के कारीगरों की भूमिका की समझ और उनका ज्ञान प्रदान कर सकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों का समुदाय की जरूरतों और उसके अनुभवों से जुड़ना, और उनके द्वारा चुने गए विकल्पों के प्रति संवेदनशील होना जरूरी है। शिक्षा की एक राष्ट्रीय नीति और पाठ्यचर्या की राष्ट्रीय रूपरेखा (जिसका पालन करने के लिए सभी स्कूल और सभी शिक्षक बाध्य होंगे) विकसित करने के प्रयास से इस दृष्टिकोण के स्पष्ट अन्तर को देखा जा सकता है। स्कूल के स्तर पर बहुस्तरीय विकल्पों के होने और बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के पुनर्निर्माण के लिए ऐसी विविधता की जरूरत है जो कि फिलहाल शिक्षा के स्वरूप की कल्पना का हिस्सा नहीं है। यह स्थिति व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ाव महसूस करते हुए काम करने की भावना, काम के प्रति स्वामित्व की भावना, पहल करने की इच्छा और रचनात्मकता (सिर्फ समुदाय की ही नहीं, बल्कि, जो सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, शिक्षकों की भी) को नष्ट करती है।

(च) ऐसे समेकित अनुभवों का उपयोग करना जो नीतिबोध और सरोकारों के बोध (हृदय), अवधारणाओं, कार्य–प्रणालियों और तार्किक योग्यता (दिमाग) तथा चीजें निर्मित करने की योग्यता, परिश्रम की सामर्थ्य

और सृजनात्मकता (हाथ) को विकसित करें। बच्चों को किसी व्यवसाय में काम करने के अवसर सुलभ करवाने के लिए, स्कूल को ऐसी जगह स्थित होना चाहिए जहाँ बच्चे ऐसी गतिविधियों में भाग ले सकें। इसलिए, यह महत्त्वपूर्ण है कि स्कूल की स्थिति ऐसी हो जहाँ समुदाय उसके साथ ऐसी गतिविधियों में सहभागी हो सके। ये पहलू कमरों का आकार या खेल के मैदान का आकार आदि के समान स्थूल यांत्रिक चिन्ताओं से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

(छ) बच्चों में आत्म–विश्वास और सामाजिक प्रतिबद्धता का विकास होना, समुदाय में तथा स्कूल के काम करने में अपनी भूमिका को समझना और उसके लिए जिम्मेदारी लेना सीखना।

उपरोक्त सिद्धान्तों की दृष्टि से स्थानीय समुदाय से ऐसे शिक्षक खोज निकालना भी महत्त्वपूर्ण होगा, जिन्हें प्रारम्भिक स्कूलों में, खासकर प्राथमिक कक्षाओं में, पढ़ाने के लिए विशेष रूप से तैयार किया जा सके। इसके लिए, उनके पास स्थानीय ज्ञान, योग्यता, समानुभूति और बच्चों की संस्कृति, परम्पराओं और भाषा की समझ होना किसी शैक्षणिक डिग्री के होने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा।

वर्तमान सन्दर्भ में ये सिद्धान्त

जाहिर है कि शिक्षा के वर्तमान सन्दर्भ में इन सिद्धान्तों के लागू होने की कल्पना करना आसान नहीं है। वर्तमान परिदृश्य में समुदाय के लिए स्कूली शिक्षा का संचालक, साधनों की आपूर्ति करने वाला और उसका स्वामी हो सकना किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। पिछले तीन दशकों या उससे भी कुछ अधिक समय से, समुदाय को सहभागी बनाने के लिए अलग तरह की प्रक्रियाएँ निर्मित की गई हैं। वर्तमान में शिक्षा के अधिकार ने एक स्कूल प्रबन्धन समिति (स्कूल मैनेजमैंट कमेटी – एस.एम.सी.) का होना अनिवार्य कर दिया है जिसमें स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता–पिता प्रमुख सदस्यों के रूप में शामिल होते हैं। शिक्षकों की उपस्थिति की निगरानी रखने, स्कूल के भवन में योगदान देने और उसके निर्माण होने की देखरेख करने जैसे कामों में तथा स्कूल के शिक्षकों के साथ मिलकर स्कूल के विकास की योजना बनाने जैसे कार्यों सहित कुछ अन्य बातों में समुदाय को शामिल करने के प्रयास किए गए हैं। कुछ सूक्ष्म–स्तर पर और कुछ थोड़े अधिक विस्तृत स्तर पर समुदाय की संस्कृति, भाषा और ज्ञान को शामिल करने, साथ ही मातृभाषा के उपयोग और बहुभाषावाद के लिए आवाज उठाने के प्रयास भी किए गए हैं। एन.सी.एफ. 2005 ने इन सभी के साथ ही किसी व्यवसाय के कार्य का अनुभव प्रदान करने, मानवीय श्रम के प्रति आदर की भावना विकसित करने आदि पहलुओं सहित बच्चों के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने पर जोर दिया है। पर ऐसे सभी प्रयास आधे–अधूरे मन से किए गए हैं और उसमें केन्द्रीकृत अफसरशाही के विशाल ढाँचे को जस का तस रहने दिया गया गया है। वास्तव में, विकेन्द्रीकरण की कोरी शाब्दिक स्तुति के साथ नियंत्रण और निर्देशन ज्यादा ही बढ़ गया है और स्कूल से और भी दूर हो गया है। बच्चों और समुदाय के प्रति संवेदनशील होने के बजाय, यह व्यवस्था उन पहलुओं के झूठे या गढ़े गए साक्ष्य और आँकड़े प्रस्तुत करने के लिए काम करती है जिन्हें केन्द्रीकृत अधिकारियों के द्वारा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। समुदाय को शामिल न किए जाने के कारण और केन्द्रीय स्तर पर निर्धारित शिक्षा कार्यक्रमों के कारण, शिक्षा की व्यवस्था अत्यधिक रूप से अलगाव पैदा करने वाली बनती जा रही है। हालाँकि हो सकता है कि आवश्यक रूप से एक ऐसी स्कूली व्यवस्था का होना सम्भव और उचित न हो जिसमें स्कूलों का प्रशासन ग्रामीण समुदाय द्वारा किया जाता हो, वहीं दूसरी ओर स्कूलों के संचालन और प्रशासन की जिम्मेदारी को चुने गए जन प्रतिनिधियों को सौंपने के प्रयास आधे–अधूरे मन से किए गए हैं और परिणामस्वरूप कारगर साबित नहीं हुए हैं। यह मूल रूप से उन धारणाओं के प्रतिकूल है जो बुनियादी शिक्षा में शामिल हैं। उदाहरण के लिए प्रशासन की जिम्मेदारी के अनिवार्य अंग के रूप में समुदाय को उसकी आर्थिक सोच, संस्कृति और कार्यपद्धति के सहित शामिल करने की सम्भावनाओं को परखा जाना चाहिए।

शिक्षा व्यवस्था के सार्वभौमिक और एकरूप होने को आवश्यक मानकर उसका संचालन किया जाता है। विविधता को स्वीकार न करके उसमें निष्पक्षता का भ्रम पैदा करने का प्रयास किया जाता है। विशालता, एकरूपता और एक ही दिशा में उन्मुख आकांक्षाओं के परिणामस्वरूप अनेक विकृतियाँ पैदा होती है, जिनमें विद्यार्थियों की छँटनी हो जाना, जमीनी स्तर पर वास्तविक सहभागिता से परहेज होना, वंचित तथा सामाजिक हाशिए की पृष्ठभूमि वाले बच्चों और सीखने की दृष्टि से पिछड़े हुए बच्चों को न्यायोचित सुविधा न मिल

पाना आदि शामिल हैं। हम उस रवैए से लड़ रहे हैं जो मानता है और यकीन करता है कि वंचित पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चे सीखने के लिए बुनियादी रूप से ही उपयुक्त नहीं होते। उनके लिए किया जाने वाला कोई भी अतिरिक्त प्रयास बेकार ही जाने वाला है। यह दृष्टिकोण सीखने की जिम्मेदारी बच्चों और समुदाय पर डाल देता है। वह कहता है कि यदि सीखने की चाह नहीं होगी तो कोई भी शिक्षित नहीं होगा, चाहे शैक्षिक कार्यक्रम की गुणवत्ता कैसी भी हो। 100–150 साल पहले की तरह आज भी, हमारे यहाँ माँग अँग्रेजी और अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों की है। इसे यह कहकर खारिज कर देना अनुचित और नासमझी भरा होगा कि यह विकृत दिमाग वाले लोगों द्वारा पैदा की गई एक काल्पनिक माँग है। नौकरियाँ दिए जाने की निरन्तर केन्द्रीकृत होती हुई व्यवस्था, केन्द्रीकृत आकलन और स्पर्धात्मक प्रदर्शन के माहौल के बीच, बुनियादी तालीम की भावना शिक्षा के स्कूली कार्यक्रम का हिस्सा नहीं बन सकती।

बुनियादी शिक्षा के बारे में भ्रान्तियाँ

बच्चों के सीखने की आपस में तुलना करने वाली, फिर क्षेत्रवार ढंग से उनकी तुलना करने वाली और भविष्य की बेहतर शिक्षा और बेहतर अवसरों की ओर ले जाने वाले मार्ग के रूप में ही प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने वाली व्यवस्था से, बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों और प्रयोजनों का तालमेल नहीं बिठाया जा सकता। बुनियादी शिक्षा के अनुसार, शिक्षा का प्रयोजन किसी छन्ने जैसा नहीं हो सकता। स्कूली शिक्षा को एक कारगर छाँटने वाली मशीन की तरह देखने के परिणामस्वरूप बुनियादी शिक्षा के बारे में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हुई हैं। ये इसके उन सिद्धान्तों और मूलभूत उद्देश्यों के बारे में लोगों को भ्रमित करती हैं जिनको काम तथा शिक्षा और समुदाय की सहभागिता द्वारा निरूपित किया जाता है। उदाहरण के लिए, बुनियादी शिक्षा का आशय भ्रामक रूप से निम्नलिखित में से कुछ भी मान लिया जा सकता है :

(क) यह ग्रामीण बच्चों और गरीब बच्चों के लिए होती है। इन बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा की जरूरत होती है क्योंकि उनके लिए अपने हाथों से काम करना सीखना जरूरी होता है।

(ख) बच्चे की मातृभाषा के उपयोग का मतलब केवल उस भाषा का इस्तेमाल करना होता हो जो बच्चे के निकटतम परिवार, विशेष रूप से उसकी प्राथमिक देखभाल करने वाले व्यक्ति, द्वारा बोली जाती है।

(ग) इसमें चरखा चलाना और उसके जैसे पाठ्यचर्या में शामिल अन्य व्यवसायों के बारे में सीखना अवश्य शामिल होगा और यह निश्चित ही नए विचारों और नई दिशाओं को आत्मसात करने में बाधक होगी। स्कूल के लिए चुने गए व्यवसाय या काम अवश्य ही उन्हीं विचारों पर आधारित होंगे जो तब प्रचलित थे जब 70 साल पहले भारत में बुनियादी शिक्षा का विचार विकसित किया जा रहा था।

(घ) स्कूल का वित्तीय आधार स्वयं स्कूल के उत्पादन से होने वाली आय ही होना चाहिए।

(च) स्कूल में किए जाने वाले सभी कार्य परस्पर एक–दूसरे से और विभिन्न व्यवसायों के माध्यम से काम करने के द्वारा सिखाई जाने वाली अवधारणाओं से जुड़े होना चाहिए।

(छ) बुनियादी शिक्षा का मतलब बच्चों को व्यवसायों के लिए तैयार करना होता है और यह व्यावसायिक शिक्षा की भूमिका जैसी होती है।

(ज) बुनियादी शिक्षा केवल प्रारम्भिक स्तर तक ही होती है और इसके सिद्धान्त माध्यमिक और उच्चतर–माध्यमिक शिक्षा के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। उच्च शिक्षा के लिए इसके कोई निहित प्रयोजन नहीं हैं।

इनमें से कोई भी धारणा सही नहीं है और इनमें से कुछ तो वास्तव में बुनियादी शिक्षा की मूल भावना के ही प्रतिकूल हैं। परन्तु बहुत से लोगों के लिए इनके प्रमुख धारणाओं के रूप में उभरने के पीछे के कारणों की वजह यह तथ्य था कि बुनियादी शिक्षा के विचार आजादी की लड़ाई के दौरान विदेशी शासन का प्रतिरोध निर्मित करने और उसकी सहायता करने के साधन के रूप में निकलकर आए थे। साथ ही उनमें आर्थिक और अन्य प्रकार के ऐसे तत्व निहित थे जो प्रतिरोध के किसी स्वरूप को निरूपित करते थे। बुनियादी शिक्षा के विचार और पाठ्यचर्या एक विशेष प्रकार के राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय पहचान की धारणा के इर्द–गिर्द विकसित हुए थे। अन्य बातों के अलावा, उनमें वह भावना भी व्याप्त है। वह एक ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें सहभागिता के माध्यम

से नियंत्रण बहुत हद तक 'समुदाय' का होता है और खुद सरकार की भूमिका न्यूनतम होती है। पर इन सभी सिद्धान्तों के साथ काफी हद तक समझौता करना पड़ा और उन्हें हल्का करना पड़ा जब विस्तार करती हुई स्कूली शिक्षा की व्यवस्था में ऐसे स्थानों पर भी स्कूल खोले जाने की जरूरत पड़ी जहाँ समुदाय उसके लिए तैयार नहीं था। एक ओर सिद्धान्त थे और दूसरी ओर जमीनी हकीकत थी, यह देखते हुए कोई अचरज की बात नहीं है कि बुनियादी शिक्षा का विचार बहुत विकृत कर दिया गया।

ऊँच–नीच का पदानुक्रम, दूरी और केन्द्रीकरण

केन्द्रीकृत व्यवस्था की अन्तर्निहित प्रकृति ऐसी है जिसमें स्कूल तथा शिक्षक की कार्यप्रणाली और भरोसे को बाहर से आने वाले निरीक्षक, जो एक बाह्य परीक्षा का संचालन भी करता है, की टिप्पणियों और विचारों के अधीन रहना होता है। इस व्यवस्था का तालमेल उस शिक्षा की भावना से नहीं बैठता जिसमें बड़ा हिस्सा स्थानीय कल्पना और प्रशासन का होता है। आजादी के पहले के परिदृश्य में उभरने वाली उस तरह की शिक्षा व्यवस्थाओं में स्कूलों में स्वयं को प्रेरित करने और अपने उद्देश्यों को निर्मित करने पर जोर दिया गया था। उनकी ऊर्जा और उद्यम का स्रोत व्यक्तिगत और सामूहिक चिन्तन और कल्पनाएँ थीं जिसमें जिम्मेदारी लेने और चुने गए विकल्पों को क्रियान्वित करने के अवसर थे। उसके रास्ते में आने वाली चुनौतियों का सामना किया जाना था। उन्हें बाधाओं के बजाय ऐसी घटनाओं की तरह लिया जाना था जो स्वयं के लिए पेश की गई चुनौतियाँ थीं। उसमें सृजन की अनुभूति थी, नई चीजें सीखने और उन्हें आपस में साझा करने का रोमांच था। उनको लगता था कि वे कुछ सार्थक और महत्त्वपूर्ण कर रहे थे और साथ ही वे अपने प्रयासों के परिणामों को प्रत्यक्ष रूप से देख सकते थे। ऐसा नहीं कि वे उत्कृष्ट पद्धतियों और सर्वोत्तम रणनीतियों का उपयोग करने में समर्थ थे, बल्कि वे जिनका उपयोग करते थे वे उनके और उनके विद्यार्थियों के लिए सबसे अच्छी थीं, क्योंकि वे उनमें यकीन करते थे। और उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात थी कि वे ही उनके मालिक थे क्योंकि उन्हें लगता था कि उनको उन्होंने स्वयं रचा था।

केन्द्रीकृत सत्ता के कारण होने वाली अधिकाधिक औपचारिक नियमबद्धता, बौद्धिकता, विशेषज्ञवाद, दम्भ और स्थानीय बातों के प्रति अनादर की भावना के परिणामस्वरूप इनमें से कई विचारों और सिद्धान्तों का स्थूलीकरण कर दिया गया है। शिक्षा के बारे में, सीखने की प्रक्रिया के बारे में और समाज के बारे में बढ़ते हुए ज्ञान ने उन लोगों को बहुत पीछे छोड़ दिया है जो वास्तव में शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, और उनको भी जो इसके प्रमुख सहभागी हैं। शिक्षा का विराट केन्द्रीकृत ढाँचा उनमें से किसी भी समूह का आदर करने में और उन्हें उनकी भूमिका, जिम्मेदारी और उसे निभाने के प्रति सचेत करने में असमर्थ रहा है। बुनियादी शिक्षा के शैक्षिक सिद्धान्तों के मूल तत्व के लिए इस व्यवस्था की आधारभूत रूप से पुनः संरचना किया जाना आवश्यक होगा। यह एक बहस का मुद्दा है कि हम स्थानीय नियंत्रण चाहते हैं या नहीं या यह चिन्ता करना कि स्थानीय नियंत्रण से विकृतियाँ पैदा होंगी और यह आधुनिकीकरण के कार्यक्रम के विरुद्ध होगा। उस स्थिति को मानने पर और यदि हम शिक्षा पर राज्य के नियंत्रण में विश्वास करते हैं, हो सकता है कि बुनियादी शिक्षा आगे बढ़ने का सर्वोत्तम मार्ग न हो।

हृदय कांत दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार भी रहे हैं। वे पिछले 40 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न तरीकों से और उसके विभिन्न पहलुओं पर काम करते रहे हैं। विशेष रूप से, वे शिक्षा में अभिनव परिवर्तनों और राज्य के शैक्षिक ढाँचों में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy.dewan@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।